शिक्षकों की कलम से

विगत कुछ अंकों से हमने एक नया कॉलम शुरू किया है जिसके माध्यम से शिक्षक एवं शिक्षक प्रशिक्षक अपने अनुभवों को साझा कर सकें। इस बार तीन अनुभव प्रस्तुत हैं। इन पर अपनी राय दीजिए। साथ ही, एक छोटी-सी गुज़ारिश है कि आप अपने अनुभवों को भी ज़रूर साझा करें।

1. ज़ीरो बनाम कट्टम ..... मोहम्मद उमर
2. बच्चों-सी बातें करते हो ..... अनिल सिंह
2. आइसक्रीम स्टिक - क्षेत्रफल ..... रूपा सुरेश

बच्चों-सी बातें करते हो

अनिल सिंह

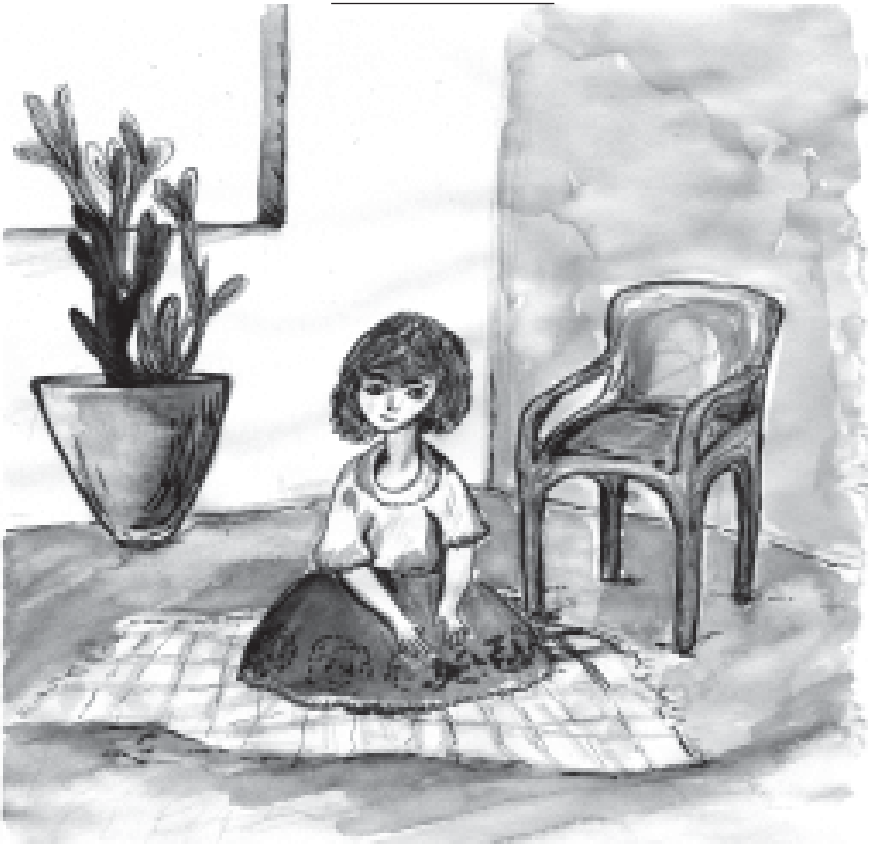

ये जुमला प्रयोग करते वक्त कहने वाले के दिमाग में यही बात होती है कि बच्चे नासमझी की, बेतुकी, बेवकूफाना, अव्यवहारिक, अवास्तविक और लगभग नामुमकिन-सी लगने वाली बातें करते हैं। इसीलिए 'बच्चों-सी बातें करते हो' एक रूढ़ मुहावरे की तरह हमारी कहन में शामिल है।

हम बड़ों की दुनिया में बच्चों के लिए वैसे ही जगह और मान्यता कम

है, फिर ऐसे जुमले हमारी तंग सोच और समझ को ही पुष्ट करते हैं। उम्र और कद में छोटा होने भर से किसी का तर्क या नज़रिया, नज़रअन्दाज़ करने लायक या हल्का कैसे हो सकता है?

बच्चों के साथ बातें करने का साहस यदि हम कर सकें तो बहुत सम्भव है कि इस तंगहाली से हम उबर पाएँगे। कितनी तार्किक, व्यवहारिक और समझदारी भरी हैं उनकी बातें, ये चार घटनाएँ उसकी जीती-जागती मिसाल हैं।

उदाहरण - एक

पहली घटना में एक सात साल की बच्ची मुझसे बात करते वक्त कुर्सी से उतरकर नीचे बैठते हुए कहती है, "राजा साहब आज ज़मीन पर बैठेंगे।" मुझे यह वाक्य जँचा। बात आगे बढ़ाने की सूझी। मैंने कहा, " 'राजा साहब आज ज़मीन पर बैठे हैं' इस बात के क्या-क्या मतलब हो सकते हैं?" बच्ची ने मुश्किल से दो पल लिए होंगे और बोली, "आज राजा साहब का मन ज़मीन पर बैठने को हुआ इसलिए वो ज़मीन पर बैठे हैं।" मैंने उसकी बात पर पूरा गौर किया और गम्भीरता से कहा, "बिलकुल ठीक।" ये हो ही सकता है कि उनका मन ज़मीन पर बैठने को हुआ हो जो कि किसी का भी हो सकता है। ये बड़ी सहज, मानवीय और निर्विवाद बात है। मैं यही मानकर चल रहा था कि यह बात उसने अभी की स्थिति में और निहायत अपने आप को केन्द्र में रखकर की। मैंने बात को आगे बढ़ाया, "और क्या हो सकता है?" उसने बड़े ही आत्मविश्वास से जवाब दिया, "राजा साहब की कुर्सी धुलाई के लिए गई हुई है, इसलिए राजा साहब ज़मीन पर बैठे हुए हैं।" मैं उसकी तरफ देखता रह गया। अबकी यह बात उसकी नहीं थी। यह बात मुझे समझ में आ गई। यह एक रचनात्मक बात थी। इस बात में वो खुद नहीं थी, कोई राजा था। वह किसी राजा के बारे में सोचकर ऐसा कह रही थी। मेरे मन में (या यूँ कहें कि हम बड़ों के मन में) तो ये बात कभी आ ही नहीं सकती थी कि 'राजा साहब की कुर्सी धुलने के लिए गई है और इसलिए राजा साहब ज़मीन पर बैठे हुए हैं'। कितना साफ-सुथरा और जीवन के करीब का तर्क है। राजा साहब का ऐसा सामान्यीकरण करने की ज़ुर्रत हम तो नहीं कर सकते थे।

मेरी रुचि बढ़ती गई। मैंने कहा, "और क्या हो सकता है?" बच्ची बोली, "राजा साहब लोगों के बीच ज़मीन पर आकर बैठे हैं क्योंकि वो लोगों के प्रति अफसोस ज़ाहिर करना चाहते हैं।" मैं चौंका। 'अफसोस ज़ाहिर करना चाहते हैं' से मुझे लगा, शायद 'अफसोस' शब्द गलती से प्रयोग हो गया है, जैसा कि कई बार बच्चे कुछ शब्दों के जो अर्थ वो मान कर बैठे हैं, उसी के लिए प्रयोग कर देते हैं। मैंने समझने के लिए पूछा, "किस बात का

अफसोस?" उसने फिर कहा, "राजा भी तो आम लोगों की तरह एक इन्सान है न, बस उसकी पोस्ट राजा की है। यह बताने के लिए वो लोगों के बीच ज़मीन पर बैठे हुए हैं।" मुझे लगा वह शायद सहानुभूति शब्द का इस्तेमाल करना चाह रही थी पर उस वक्त उसके पास वह शब्द था नहीं और अफसोस को ही वह इसके लिए सटीक शब्द जानती थी, सो प्रयोग कर दिया। मुझे लग रहा था कि अभी कोई परत और है जो मैं नहीं खोल पा रहा हूँ, क्योंकि आम लोगों की बात जोड़कर उसने एक नया विमर्श शुरू किया था। मैं 'अफसोस' को ही पकड़े रहा। मैंने फिर कहा, "पर इसमें अफसोस ज़ाहिर करने की क्या बात है?" उसने बड़ा ही सधा हुआ उत्तर दिया, "जनता के पास कुर्सी और सोफे नहीं हैं, इस बात का अफसोस ज़ाहिर करने के लिए राजा साहब उनके बीच ज़मीन पर बैठे हैं, बराबरी से।" मैं दंग रहा कि यह कितना उन्मुक्त दृष्टिकोण था। अब वह एक सामाजिक-राजनीतिक चेतना के साथ यह बात कह रही थी। और मैं अपनी संकुचित समझ लिए उसे अपनी तरह से समझने की कोशिश कर रहा था। उसकी तीनों बातें विवेचना के धरातल पर अपने पूरेपन में थीं।

'राजा साहब की कुर्सी धुलने गई है' जैसा खिलन्दड़ तर्क, हम बड़ों की खोपड़ी में बसता ही नहीं है। हमें लगता है यह तो बच्चों की-सी बात है। 'पॉलिटिकली राईट' होने के चक्कर में हम मौलिक और दोषमुक्त बात को तरजीह ही नहीं देते। कहना तो दूर, खयाल में भी हम उसे आने नहीं देते।

उदाहरण - दो

दूसरी घटना में कहानी के दौरान स्थिति कुछ यूँ बनी कि कहानी का पात्र, पाँच साल का चिंटू, जो कि जंगल घूमने का बहुत शौकीन है, हर रोज़ स्कूल से लौटकर आने के बाद, बस्ता फेंककर, अपना जंगल वाला थैला लेकर जंगल भाग जाता है और इधर-उधर भटकता फिरता है। वह एक पेड़ पर चढ़ा बैठा है, क्योंकि नीचे शेर नज़रें गड़ाए बैठा है। रात गुज़र गई और अब सवेरा होने को है, पर शेर टस-से-मस नहीं हुआ। चिंटू ने सोचा था शेर पानी पीने तो जाएगा ही, तब मौका पाकर वो खिसक लेगा। पर शेर ने भी जैसे ज़िद ठान रखी थी कि आज तो वह चिंटू को चट करके ही दम लेगा। मैंने ब्लैक बोर्ड पर सारा दृश्य बयाँ कर दिया। पेड़, पेड़ की शाख पर चिंटू, नीचे शेर और घास-फूस। छः साल के हर्ष ने कहा, "शेर का चेहरा ऊपर की तरफ देखता हुआ बनाओ, क्योंकि शेर तो ऊपर की तरफ ही देख रहा होगा।" मैंने कोशिश करके बना दिया। अब सबकी जान साँसत में थी कि क्या होगा। मैंने भी मौके को भाँपा और कहानी को आगे बढ़ाने की बजाए यहीं अटका दिया। मैंने कहा, "अब क्या होगा? कोई उपाय सोचो जिससे चिंटू बच पाए।"

आठ बच्चों के समूह ने, जिसमें ढाई साल के अबीर के साथ 6 साल की जन्नत शामिल थी, कमाल के सुझाव दिए। उनमें से तीन की चर्चा कर शायद हम 'बच्चों की-सी बातों' को समझ सकें। पाँच साल के अंश ने बिना देर लगाए कहा, "आप शेर का चित्र मिटा दो, चिंटू चुपचाप उतर कर घर चला जाएगा।" मैं उसकी तरफ देखता रह गया। दो-एक बच्चों ने भी इस उपाय से अपनी सहमति जताई। बात भी सही थी। मैंने ही तो यह विकट स्थिति खड़ी की थी पेड़ के नीचे शेर बनाकर, और मैं ही इस स्थिति से छुटकारा दिला सकता था, शेर को ब्लैक बोर्ड से मिटाकर। बराबर का तर्क था। मैंने कहा, "हाँ ये तो बढ़िया आइडिया है। चलो कुछ और सोचते हैं," कहकर मैंने कुछ और उपाय कुरेदने चाहे। तिस पर तीन साल के अर्णव ने कहा, "आप बन्दूक लिया एक शिकारी इस तरफ बना दीजिए, शेर उसे देखते ही जंगल के अन्दर भाग जाएगा और चिंटू उतरकर घर भाग आएगा।" ढाई साल के अबीर और साढे तीन साल के शिवा ने भी इसे जायज़ ठहराया। यह भी कुछ कम आइडिया न था। भई जब सब कुछ ब्लैक बोर्ड में ही हो रहा है तो यह क्यों नहीं हो सकता। मैंने ऐसा

ही किया। बन्दूक लिया एक शिकारी बना दिया। पर शेर गया नहीं। अब छः साल की जन्नत की बारी थी, उसने कहा, "आप एक शेरनी बना दीजिए। शेर, शेरनी के साथ गुफा में जाएगा और कुछ वक्त बिताएगा, इतने में मौका पाकर चिंटू पेड़ से उतरकर भाग जाएगा।" 'वक्त बिताएगा' का प्रयोग उसने दुनिया में आम तौर पर होने वाले प्रयोग की तरह ही किया लेकिन उसकी प्लेसिंग और भाव को उसने अपनी सहज समझ और निर्विवाद तर्क-बुद्धि के साथ किया। कहानी का आनन्द, संकट और चिन्ता का मौलिक भाव और उपाय की रचनात्मकता व तार्किकता, सबकुछ अपने उच्चतम स्तर पर। ये 'बच्चों-सी बातें' तो कतई न थीं।

बच्चे बता रहे थे, क्योंकि कोई उन्हें सुन रहा है, कोई उनसे पूछ रहा है। उनके बताए उपाय पर सारी स्थिति टिकी हुई है। उन पर बड़ी ज़िम्मेदारी है कि इस वक्त वे एक ऐसी बात बोल सकते हैं जो पूरा नज़ारा ही बदल दे। बच्चों के इन तर्कों को विवेचना की किसी भी कसौटी पर खरा ही पाया जाएगा।

उदाहरण - तीन

तीसरी घटना पेंगुइन वाली कहानी की है। कहानी में पेंगुइन के बच्चे खेलते-खेलते दूर समुन्दर में निकल जाते हैं। समुद्री शिकारी अक्सर उन्हें पकड़ लेता है। ये और बात है कि कभी कछुआ तो कभी मछली आकर उन्हें बचा लेते हैं और घर पहुँचा देते हैं।

अगली बार जब कहानी में पेंगुइन के बच्चे खेलते-खेलते समुन्दर में दूर निकल गए तो ढाई साल के अबीर ने ज़ोर देकर कहा, "शिकारी को मत लाना, बच्चे अभी खेलकर घर वापस आ जाएँगे।" उसकी बात में दृढ़ता थी और एक सहज संवेदना भी, कि कहानी ही सही, पर ये शिकारी के खौफ वाला हिस्सा क्या डिलीट नहीं किया जा सकता? क्यों किसी कहानी

को सनसनीखेज़ बनाने के लिए पेंगुइन के बच्चों की जान जोखिम में डालने की ज़रूरत पड़ती है? एक धरातल कहानी का था और दूसरा विचार का। अबीर दोनों धरातलों पर बराबरी से खड़ा था। मुझे यह बात जँची और मैंने तय किया कि कहानी में अब शिकारी कभी नहीं आएगा। उसकी जगह मैं नाविक लेकर आया जिसके आते ही बच्चों ने उसे 'बोट वाले अंकल' नाम दे दिया। मुझे समझ में आया कि यह सोचा-समझा यत्न था। 'बोट वाले अंकल' कहकर एक तरह से उन्होंने उस पात्र को पेंगुइन के बच्चों के पक्ष में, या यूँ कहें कि अपने पक्ष में कर लिया था। और एक तरह से कहानी का भविष्य तय कर दिया था।

बच्चे अपनी बात कहते हैं और पूरेपन से कहते हैं बशर्ते उन्हें भरोसा हो कि उनकी बातें 'बच्चों की बात' मानकर उड़ा नहीं दी जाएँगी। बच्चे अपनी बात तब भी कहते हैं जब वे देख पा रहे हों कि बड़े भी उसी कड़ी में अपनी बातें रख रहे हैं।

उदाहरण - चार

एक बार कक्षा में, 'सोने का अण्डा देने वाली मुर्गी और नाई' वाली कहानी मैंने तफसील से सुनाई। बच्चों ने खूब मज़ा लिया और उसमें जमकर भागीदारी की। कहानी के बाद मुझे सूझा कि बरसों पहले बाल भारती-3 में पढ़ी कविता इन्हें सुना दूँ तो और मज़ा आ जाएगा। मैंने शुरू किया-

एक रहा करता था नाई, जिसकी ज़्यादा थी न कमाई,
रूखी-सूखी रोटी खाता, दुख में अपना समय बिताता,
पर किस्मत ने पलटा खाया, नाई के घर में धन आया,
उसने मुर्गी पाली एक, जो थी सीधी अति ही नेक,
दो सोने के अण्डे प्यारे, देती थी वो उठ भिनसारे...

मैं आगे की लाइनें बोलने ही वाला था कि चार साल की माही ने कहा, "अब वही कहानी दुबारा क्यों सुना रहे हो?"

मुझे ज़बरदस्त धक्का लगा। माही की बात पर और बच्चों की भी यही राय थी। वो नई कहानी सुनना चाहते थे। उन्हें तो घटनाक्रम और विषयवस्तु में रुचि थी। जो रहस्य न रह गया उसका मज़ा भी जाता रहा। फिर भले

ही उसका रूप क्यों न बदल के पेश किया जाए। मुझे समझते देर न लगी कि कविता तो वह मेरे लिए है क्योंकि मैंने बरसों इसे कविता की तरह पाला-पोसा, सहेजा है। और यही सोचकर पूरे हावभाव व तल्लीनता से सुनाने लगा कि इन्हें तो कहानी के 'इस स्वरूप' में भी मज़ा ही आएगा। पर मेरा ये सोचना कितना अतार्किक था। बच्चों के लिए तो वह भी निहायत एक कहानी थी, जिसे मैं बेवकूफों की तरह गा रहा था। बच्चे तो वह कहानी सुन चुके थे।

हम बड़ों के दिमाग में बनी बनाई पटरियाँ हैं, हमारी रेल उसी पर दौड़ने लगती है। बच्चे ज़रूरत की पटरियाँ बिछाते हैं, रेल दौड़ाते हैं और फिर पटरियाँ समेटकर आगे चल पड़ते हैं। हर बार नई पटरियाँ। खालिस नई। और रेल ऐसी कि जो उल्टी भी चल सके।

'बच्चों-सी बातें करते हो' जुमले में बड़ों का जो दम्भ झलकता है उसे बच्चों की बातें ही आईना दिखा सकती हैं। आईने के सामने बराबरी से खड़े होना ज़रूरी है।

अनिल सिंह: वंचित तबके के बच्चों के साथ काम करने वाली संस्था 'मुस्कान' के साथ लम्बे समय तक काम किया है। वर्तमान में आनन्द निकेतन डेमोक्रेटिक स्कूल, भोपाल से जुड़े हैं। कहानी प्रस्तुति में विशेष रुचि।
सभी चित्र: शिवांगी: अम्बेडकर युनिवर्सिटी, दिल्ली से विज़्युअल आर्ट्स में स्नातकोत्तर। लोक कथाओं की चित्रकारी पर शोध कर रही हैं। स्वतंत्र रूप से चित्रकारी करती हैं। दिल्ली में निवास।